नईदुनिया

महँगाई और सरकारी नीतियों के खिलाफ यूरोप में गृहयुद्ध जैसे हालात ...!

डॉ. विश्वास तिवारी

श्रीलंका, बांग्लादेश और फिर नेपाल से शुरू हुआ तख्ता पलट का असर अब विश्व के अन्य देशों में भी दिखने लगा है। यूरोप के देशों में फ्रांस से लेकर इटली तक, पुर्तगाल से लेकर अल्बानिया और चेक रिप्बलिक से अर्जेंटिना तक में युवाओं का गुस्सा सड़क पर फूट रहा है। कहीं महंगाई, कहीं भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, उच्च शिक्षा के बजट में कटौती या सरकारी संस्थाओं में सुविधाओं की कमी ने युवाओं और जेन जी की बैचेनी बढ़ा दी है। हाल ही में एक नवंबर को जर्मनी के कई शहरों में भी जेन जी ने उग्र प्रदर्शन किया और दुकानों में लूटपाट की और आग लगा ई। युवाओं की वहां पुलिस से भी झड़प हुई।

कुछ सरकारों को तो ये भी लगता है कि यह विपक्ष की सत्ता परिवर्तन की साजिश हैं और वो ही युवाओं को भड़का रहे है। आजकल के युवाओं को वादों पर भरोसा नहीं है, वो त्वरित नतीजे चाहते है। फ्रांस और इटली जैसे देशों में प्रदर्शन काफी हिसंक हो चुका है। यूरोप में हो रहे हिंसक प्रदर्शनों में अकेले फ्रांस की हिस्सेदारी ही 66 प्रतिशत है। भारतीय दूतावास ने भी वहां रह रहे नागरिकों के लिए एडवाइजरी जारी की है। फ्रांस में स्थिति नियंत्रण से बाहर हो रही है और वहां पर वामपंथी और शरणार्थियों की भीड़ ने देश जलाना शुरू कर दिया है। फ्रांस में तो यह प्रदर्शन हिंसक हो चुका है और दुकानों, मॉल से लेकर सरकारी संपत्तियों को नुकसान पहुंचाया जा रहा है। इस प्रदर्शन के पीछे वामपंथी कार्यकर्ता शामिल है जिन्हें मिडिल ईस्ट से आए शरणार्थियों का समर्थन मिल रहा है। फ्रांस में यह अशांति सितंबर के माध्य में बदहाल शिक्षा व्यवस्था और शिक्षकों की कमी के खिलाफ विद्यार्थियों की नाराजगी से शुरू हुई थी। फिर देखते ही देखते इसमें आम जनता भी जुड़ गई। इटली के कुछ इलाकों में हालात इतने बिगड़ गए कि पुलिस को आंसू गैस और वॉटर कैनन का इस्तेमाल करना पड़ा। ईधन की बढ़ती कीमतें, आसमान छूते, घरों के किराये और कीमतें, आसमान, छूती महंगाई और गिरते जीवन स्तर जैसे मुद्दों ने इस विरोध में एक बड़े राष्ट्रव्यापी आंदोलन में बदल दिया। फ्रांस में अब राष्ट्रपति चुनाव में मात्र छह माह बाकी है, ऐसे में फ्रांस के राष्ट्रपति इमैनएल मैंको का अगला चुनाव जीतना मुश्किल लग रहा है। इस आंदोलन ने विश्व भर में फ्रांस की छवि को नुकसान पहुंचाया है और वित्तीय बाजारों को हिलाकर रख दिया है। इधर अमेरिका के राष्ट्रपति आपदा में अवसर ढूंढ रहे है। उन्होंने अपने बयान में यह तक कह दिया है कि फ्रांस आने वाले समय में एक मुस्लिम देश बन जाएगा। 1789 की फ्रांसीसी क्रांति एवं 1830 और 1848 की क्रांतियों के बाद यूरोप के घटनाक्रम पर नजर रखने वाले ऑस्ट्रिया के चांसलर डयूक मेटरनिक ने कहा था कि जब फ्रांस को जुखाम होता है तो पूरा यूरोप छींकने लगता है। जब फ्रांस में कोई क्रांति होती है तो पूरे यूरोप में क्रांति शुरू हो जाती है। फांस में जब छात्रों का आंदोलन शुरू हुआ तो यूरोप के छह अन्य देशों में भी छात्रों के आंदोलन शुरू हो गए। हालांकि अलग-अलग देशों में कारण अलग-अलग रहे। शुरूआत में फ्रांस के राष्ट्रपति मैक्रो ने इस आंदोलन को गंभीरता से नहीं लिया, लेकिन जब अंर्तराष्ट्रीय स्तर पर इस मुद्दे को लेकर चिंता व्यक्त की तब कहीं जाकर फ्रांस सरकार ने छात्रों की समस्या सुनने को तैयार हुई। ऐसे में सवाल ये उठता है कि लोकतांत्रिक देशों में क्या लोगों को अपनी परेशानी सरकारों को बताने का हक नहीं है? क्या शांतिपूर्वक आंदोलन की इजाजत नहीं है? क्या वो सरकार से अपना हक नहीं मांग सकते है?



वैश्वीकरण और उदारीकरण के कारण वैश्विक स्तर पर आर्थिक विषमता से अमीरी और गरीबी की खाई और गहरी हो गई है। व्यवसायिक संस्थान फल फूल रहे है, वहीं सरकारी अनुदानों से चलने वाले अस्पताल और शिक्षण संस्थानों की बदहाली से लोगों को स्वास्थ्य और शिक्षा की दिक्कत बढ़ती जा रही है। सरकारी अस्पतालों में डाक्टरों की कमी है और वहीं शिक्षण संस्थाओं में शिक्षकों की कमी है। इसके कारण आम जनता चौतरफा आर्थिक दबाव से गुजर रही है। पहले आई कोरोना महामारी ने विश्व की आर्थिक आपूर्ति श्रृंखला में रूकावट पैदा की, फिर उसके बाद रूस और यूक्रेन युद्ध ने सब बर्बाद कर दिया।

वैश्वीकरण और उदारीकरण के कारण वैश्विक स्तर पर आर्थिक विषमता से अमीरी और गरीबी की खाई और गहरी हो गई है। व्यवसायिक संस्थान फल फूल रहे है, वहीं सरकारी अनुदानों से चलने वाले अस्पताल और शिक्षण संस्थानों की बदहाली से लोगों को स्वास्थ्य और शिक्षा की दिक्कत बढ़ती जा रही है। सरकारी अस्पतालों में डाक्टरों की कमी है और वहीं शिक्षण संस्थाओं में शिक्षकों की कमी है। इसके कारण आम जनता चौतरफा आर्थिक दबाव से गुजर रही है। पहले आई कोरोना महामारी ने विश्व की आर्थिक आपूर्ति श्रृंखला में रूकावट पैदा की, फिर उसके बाद रूस और यूक्रेन युद्ध ने सब बर्बाद कर दिया। इसके बाद अमेरिका द्वारा ईरान पर जबरन थोपे गए युद्ध ने पूरी दुनिया में ईधन संकट उत्तपन्न कर दिया। ऊर्जा आपूर्ति के बाधित होने से गैस और पेट्रोल-डीजल के दामों में तेजी से वृद्धि हुई और महंगाई अपने चरम पर पहुंच गई। ऐसे में सबसे ज्यादा युवा पीढ़ी के सपनों पर कुठाराघात हुआ। शिक्षा व्यवस्था महंगी हुई और बेरोजगारी बढ़ती गई। अपने भविष्य के सुनहरें सपनों को मटियामेट होते देख, ये युवा आक्रोशित हो गए और सड़कों पर उतर आए। सरकारों ने इन्हें रोकने की कोशिश की तो हिंसा भड़क गई। सरकार को चाहिए कि इन लोगों को शांतिप्रिय आंदोलन से न रोका जाए और इनकी परेशानी को धैर्यता से सुनकर बातचीत के जरिए कोई रास्ता निकाला जाए वर्ना प्रेशर कुकर के दबाव की तरह इनका गुस्सा कभी भी बाहर निकल सकता है। जिन देशों में इस समय सरकार विरोधी आंदोलन चल रहे है, उनमें फ्रांस, स्पेन, इटली, पोलैंड और ग्रीस में जल्द ही चुनाव होने वाले है। ऐसे में राजनैतिक दल भी अपनी - अपनी राजनीति की रोटियां सेंक रहे है।

रूस-यूक्रेन युद्ध से यूरोपीय रक्षा प्रणाली की कमजोरियां उजागर हुई है। खाड़ी के कई देशों की तरह यूरोप के कई देश सुरक्षा की गारंटी के लिए अमेरिका पर निर्भर रहे है। डोनल्ड ट्रंप के आने के बाद अमेरिका के सुरक्षा के बदले टैरिफ पर सौदेबाजी के रवैये ने इन देशों को समझा दिया है कि उन्हें अब सुरक्षा की जवाबदारी खुद उठानी होगी। इसके लिए रक्षा बजट को बढ़ाना होगा जो कि इस समय उनकी अर्थव्यवस्था की स्थिति में संभव नहीं होगा। जब फैसला संसद में नहीं, सड़कों पर होने लगे, तो लोकतंत्र को खतरा भीड़तंत्र से होगा।। ऐसे में सरकार को सावधान हो जाना चाहिए, नहीं तो जो यूरोप के देशों में हो रहा है, वो कहीं भी हो सकता है।

मोबाइल में बोल रहा है रोबोट, अब सरकार ने पकड़ी उसकी गर्दन

हर कंपनी को लिखनी होगी अपनी एआई की आत्मकथा

दुनियाभर में एआई के बढ़ते कदमों को लेकर चिंता के बीच भारत ने पहली बार दूरसंचार क्षेत्र में बड़ा कदम उठाया है। अब भारत में हर मोबाइल कंपनी को अपनी लिखित एआई नीति बनानी होगी। बिना नीति के कोई भी कंपनी एआई का उपयोग नहीं कर सकेगी। अभी तक हर कंपनी एआई का इस्तेमाल कर रही थी, लेकिन कोई स्पष्ट रूप से नहीं बताता था कि ग्राहक के डेटा का क्या हो रहा है और कौन-सा एल्गोरिदम किस तरह उसकी जेब से पैसा निकाल रहा है। अब सरकार ने कहा है कि सब कुछ लिखित में लाओ, बोर्ड से मंजूर कराओ और फिर इस्तेमाल करो। सरकार को डर है कि एआई अगर बिना लगाम के चला तो पूरा नेटवर्क ही ठप हो सकता है। इसलिए अब हर कंपनी को बताना होगा कि वह एआई का इस्तेमाल कहां, कैसे और किस डेटा के आधार पर कर रही है। यह नीति ऐसी नहीं होगी कि किसी मैनेजर ने बना दी, बल्कि इसे कंपनी के बोर्ड या सर्वोच्च प्रबंधन की मंजूरी लेनी होगी, ताकि कल को कोई यह न कह सके कि उसे पता ही नहीं था।



एआई से गलती हुई तो जेल कंपनी जाएगी, मशीन नहीं तीन स्तर पर होगा एआई का हिसाब

इस व्यवस्था में तीन अहम बदलाव हैं। पहला है लिखित नीति। जिस दूरसंचार कंपनी में एआई का इस्तेमाल हो रहा है, उसे लिखित रूप में बताना होगा कि वह इसका उपयोग कहां और कैसे कर रही है। नेटवर्क में, बिलिंग में, ग्राहक सेवा में या विज्ञापन में, हर जगह एआई के इस्तेमाल का हिसाब देना होगा। दूसरा बदलाव है जोखिम का वर्गीकरण। एआई सिस्टम को तीन श्रेणियों में रखना होगा, उच्च जोखिम, मध्यम जोखिम और सामान्य जोखिम। उच्च जोखिम वाला वह सिस्टम है, जिससे बड़ी संख्या में ग्राहकों की सेवाओं पर गंभीर असर पड़ सकता है, जैसे पूरा नेटवर्क ठप हो जाना। मध्यम जोखिम वाले सिस्टम का असर सीमित हो सकता है, लेकिन उनकी निगरानी जरूरी होगी। तीसरा बदलाव है जवाबदेही। यदि एआई के कारण बड़ी तकनीकी गड़बड़ी होती है या उपभोक्ताओं को नुकसान पहुंचता है तो कंपनी को जवाब देना होगा और उसकी जांच होगी। इसके तहत कार्रवाई भी की जा सकेगी। पहले एआई कहता था कि सर, आपका बिल इतना है। अब एआई तय कर रहा है कि आपका बिल कितना होना चाहिए। पहले एआई कहता था कि नेटवर्क व्यस्त है, अब एआई तय करता है कि किसका फोन लगेगा और किसका कटेगा। मतलब एआई नौकर से मालिक बन रहा था और मालिक अगर मनमानी करने लगे तो घर कैसे चलेगा? इसलिए सरकार ने उसकी लगाम खींची है। यह लगाम तकनीक को रोकने के लिए नहीं, बल्कि उसे सही दिशा देने के लिए है। अभी तक कंपनियां कहती थीं कि हम एआई से ग्राहक सेवा बेहतर कर रहे हैं, लेकिन अंदर क्या हो रहा था, किसी को पता नहीं था। आपका डेटा कहां जा रहा है, आपकी आवाज किस मशीन को प्रशिक्षित कर रही है, आपकी लोकेशन का इस्तेमाल किस विज्ञापन के लिए हो रहा है, यह सब स्पष्ट नहीं था। अब जब लिखित नीति बनेगी तो कंपनी को खुद सोचना पड़ेगा कि वह क्या कर रही है। बोर्ड के लोग भी दस्तखत करने से पहले दस बार सोचेंगे। इससे मनमाने ढंग से एआई का इस्तेमाल बंद होगा और जो भी होगा, वह जवाबदेही के दायरे में आएगा। ग्राहक भी जान सकेगा कि उसके डेटा का इस्तेमाल किस तरह हो रहा है।

तीन जोखिम श्रेणियों का विचार महत्वपूर्ण है। हर बुखार को कैंसर जैसा नहीं देखना चाहिए। सरकार ने यही अंतर समझने की कोशिश की है। एक एआई जो आपको बेहतर रिचार्ज प्लान सुझाता है, वह कम जोखिम वाला है, लेकिन एक एआई जो पूरे राज्य का नेटवर्क संभालता है, वह बम जैसा है। अगर उसमें गड़बड़ी हुई तो करोड़ों लोग बिना नेटवर्क के रह जाएंगे। इसलिए खतरे के हिसाब से निगरानी तय करना एक व्यावहारिक कदम है। इससे कंपनियों का खर्च भी बचेगा और सुरक्षा भी बढ़ेगी।

सबसे बड़ा सवाल जवाबदेही का है। कंपनियां कहती थीं कि गलती एआई ने की है, हमने नहीं की। अब सरकार ने साफ कर दिया है कि एआई आपका है तो जिम्मेदारी भी आपकी है। अगर एआई ने गलत बिल बना दिया, किसी का नंबर बिना वजह बंद कर दिया या डेटा लीक कर दिया तो कंपनी को ही जवाब देना होगा। इससे कंपनियां एआई को ग्राहकों के इस्तेमाल में लाने से पहले उसका बार-बार परीक्षण करेंगी। यह ग्राहक के लिए सबसे बड़ी सुरक्षा है। डेटा ही नया सोना है और एआई उसकी तिजोरी की चाबी। दूरसंचार कंपनियों के पास भारत के करोड़ों लोगों का बेहद निजी डेटा है। आप कहां जाते हैं, किससे बात करते हैं और रात को कितने बजे तक जागते हैं, इस तरह की जानकारियां संवेदनशील हैं। अगर यह डेटा गलत हाथों में चला गया तो सिर्फ आपका पैसा ही नहीं, आपकी पहचान भी चोरी हो सकती है। इसलिए एआई नीति में यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि डेटा भारत में ही रहेगा या बाहर जाएगा, उसका उपयोग विज्ञापन के लिए होगा या नहीं। ग्राहक को पता होना चाहिए कि उसकी जिंदगी की चाबी किसके पास है। दुनिया के बड़े-बड़े देश अभी भी एआई पर बहस कर रहे हैं। अमेरिका में कंपनियां और सरकार नियमन को लेकर अलग-अलग विचार रखती हैं, वहीं यूरोप में एआई को लेकर विस्तृत कानूनी ढांचा तैयार किया गया है। भारत ने दूरसंचार जैसे संवेदनशील क्षेत्र में कदम उठाकर दिखाया है कि हम तकनीक से डरते नहीं, बल्कि उसे अनुशासन सिखाना चाहते हैं। अगर यह मॉडल सफल रहा तो कल बैंक, अस्पताल और रेलवे जैसे क्षेत्रों में भी ऐसे नियम आ सकते हैं और दुनिया भारत से सीख सकती है कि एआई का जिम्मेदारी के साथ इस्तेमाल कैसे किया जाए। सरकार और कंपनियों दोनों को अपनी भूमिका निभानी होगी। सरकार को चाहिए कि वह हर साल एआई का ऑडिट कराए। कंपनियां बताएं कि पिछले साल एआई से क्या फायदा हुआ और क्या नुकसान। कंपनियों को चाहिए कि वे अपनी एआई टीम में केवल कोड लिखने वाले विशेषज्ञ ही नहीं, बल्कि वकील और नैतिकता के जानकार भी रखें। सबसे जरूरी है कि ग्राहक को भी बताया जाए कि वह जिससे बात कर रहा है, वह इंसान है या रोबोट। पारदर्शिता ही भरोसे की पहली सीढ़ी है। अगर ग्राहक को पता होगा कि सामने रोबोट है तो वह ज्यादा सतर्क रहेगा। एआई को बेड़ियां नहीं, दिशा चाहिए। एआई को रोकना मतलब भविष्य को रोकना है। उसे रोकना नहीं, दिशा देनी है। हर मोबाइल कंपनी को अपनी एआई नीति बनानी होगी। यह नियम एआई को जेल नहीं भेजेगा, बल्कि उसे स्कूल भेजेगा, जहां वह अच्छा नागरिक बनना सीखेगा। आज दूरसंचार क्षेत्र से शुरुआत हुई है, कल हर क्षेत्र में यही व्यवस्था देखने को मिल सकती है। जो कंपनी जिम्मेदार एआई बनाएगी, वही बाजार में टिकेगी। जो ऐसा नहीं करेगी, वह ग्राहक के दिल से उतर जाएगी। यही नए भारत की नई डिजिटल क्रांति है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

10 सेंटीमीटर लंबा हो गया इंसान

सौ साल में इंसान की लंबाई की कहानी, पोषण, टीके और इतिहास का संगम

एक चौंकाने वाला सच यह है कि हम अपने पूर्वजों से औसतन 10 सेंटीमीटर लंबे हैं। पिछले 100 वर्षों में इंसान की औसत लंबाई में करीब 10 सेंटीमीटर की वृद्धि हुई है। जेनेसन और यूनिवर्सिटी ऑफ वाशिंगटन के शोधकर्ताओं द्वारा दुनिया भर में 1896 और 1996 में जन्मे लोगों के कद की तुलना से यह तथ्य सामने आया है। 2016 में प्रकाशित इस अध्ययन ने साबित किया कि कद केवल जीन का खेल नहीं, बल्कि रोटी, टीके और सामाजिक बराबरी का आईना भी है। आज दुनिया के युवा औसतन अपने परदादाओं से ज्यादा लंबे हैं और यह वृद्धि हर देश में एक जैसी नहीं है। कहीं यह क्रांति है तो कहीं धीमी प्रगति। सबसे ज्यादा वृद्धि दक्षिण कोरिया की महिलाओं में देखी गई है। उनका औसत कद करीब 20 सेंटीमीटर बढ़ा है। ईरानी पुरुषों की औसत लंबाई में भी करीब 20 सेंटीमीटर की वृद्धि हुई है। दक्षिण कोरिया ने पिछले 50 वर्षों में भुखमरी से समृद्धि तक का सफर तय किया। बेहतर पोषण, स्कूलों में मध्याह्न भोजन, सार्वभौमिक टीकाकरण और माताओं की बेहतर देखभाल ने एक पूरी पीढ़ी की किस्मत बदल दी। कद का बढ़ना केवल लंबा दिखने की बात नहीं, बल्कि मानव विकास सूचकांक का सबसे ईमानदार पैमाना भी है।

इंसान की लंबाई की कहानी हमेशा ऊपर की ओर नहीं गई। 10 से 12 हजार साल पहले जब इंसानों ने शिकार छोड़कर खेती शुरू की, तो कंकालों के अध्ययन से पता चलता है कि औसत कद घट गया। नवपाषाण युग में लोगों का कद शिकार के दौर के लोगों की तुलना में करीब 2.8 सेंटीमीटर कम था। इसकी वजह यह थी कि एक ही जगह बसने से आबादी का घनत्व बढ़ा, संक्रामक रोग फैले, भोजन की विविधता खत्म होकर केवल अनाज पर निर्भरता बढ़ी, प्रोटीन कम हुआ और महामारियां बढ़ीं। इंसानों के कद के इतिहास में पहला बड़ा बदलाव यही था और वह नकारात्मक था। इतिहास में कई अप्रत्याशित परिणाम भी देखने को मिले हैं। 14वीं सदी में यूरोप में फैली ब्लैक डेथ ने करोड़ों लोगों की जान ली, लेकिन उसके बाद जो पीढ़ी बची, उसका कद बढ़ गया। इंग्लैंड में मिले कंकालों के अध्ययन में पाया गया कि 14वीं सदी की शुरुआत में औसत कद 170 सेंटीमीटर था, जो 15वीं सदी की शुरुआत तक बढ़कर लगभग 174 सेंटीमीटर हो गया। दूसरा बड़ा बदलाव 18वीं सदी में औद्योगिक क्रांति के दौरान आया। कारखानों में काम, प्रदूषण और कुपोषण के कारण फिर से औसत कद में गिरावट देखी गई। औद्योगिक क्रांति के शुरुआती दौर में इंग्लैंड के मजदूरों का कद घट गया था। यह साबित करता है कि कद सामाजिक और आर्थिक बदलावों के प्रति संवेदनशील संकेतक है। किसी व्यक्ति के कद का 60 से 80 प्रतिशत हिस्सा उसके जीन पर निर्भर करता है, लेकिन बाकी 20 से 40 प्रतिशत हिस्सा उसके बचपन की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। गर्भ में उसे कैसा पोषण मिला, बचपन में वह कितनी बार बीमार पड़ा, क्या उसे टीके लगे और क्या उसे भरपूर प्रोटीन और दूध मिला? किसी आबादी के औसत कद को मापने से उन सामाजिक असमानताओं का पता चलता है, जो केवल जीडीपी से स्पष्ट नहीं होतीं। यही कारण है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन भी बच्चों में बौनेपन को कुपोषण के प्रमुख संकेतकों में से एक मानता है। बेहतर पोषण का असर सबसे महत्वपूर्ण रहा है। एक सदी पहले भोजन का मतलब सिर्फ पेट भरना था। आज अंडा, दूध, दाल, फल और हरी सब्जियों की उपलब्धता बढ़ी है। प्रोटीन और सूक्ष्म पोषक तत्वों ने हड्डियों की वृद्धि को नई ताकत दी है। इसके साथ ही टीकाकरण और स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार हुआ। 20वीं सदी की शुरुआत में एक बच्चा साल में पांच से छह बार गंभीर संक्रमण का सामना करता था। हर संक्रमण उसकी वृद्धि रोक सकता था। टीकों ने खसरा, पोलियो और डिप्थीरिया जैसी बीमारियों को रोककर बच्चों को निर्बाध रूप से बढ़ने का मौका दिया। तीसरा महत्वपूर्ण कारण मातृ स्वास्थ्य में सुधार है। स्वस्थ मां ही स्वस्थ बच्चे को जन्म देती है। गर्भावस्था में बेहतर देखभाल, आयरन की गोलियां और संस्थागत प्रसव ने जन्म के समय बच्चों के कद और वजन, दोनों को बेहतर बनाने में मदद की है। भारत में भी औसत कद बढ़ा है, लेकिन यह वृद्धि सबके लिए बराबर नहीं है। शहरों के बच्चे गांवों के बच्चों से लंबे हैं और अमीर परिवारों के बच्चे गरीब परिवारों के बच्चों से लंबे हैं। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण बताता है कि भारत में आज भी 35 प्रतिशत बच्चों में बौनापन है। इसका सीधा संबंध बचपन में कुपोषण, बार-बार दस्त होने और स्वच्छ पानी की कमी से है। इसलिए 10 सेंटीमीटर का यह आंकड़ा हमारे लिए चेतावनी भी है। लंबा भारत तभी बनेगा, जब हर बच्चे तक दूध, दाल और टीका पहुंचेगा। वैज्ञानिकों का मानना है कि पोषण और स्वास्थ्य सेवाओं में एक स्तर हासिल करने के बाद लंबाई की वृद्धि रुक सकती है। यूरोप के कई देशों, जैसे नीदरलैंड और नॉर्वे में पिछले 20 वर्षों में कद बढ़ना लगभग बंद हो गया है। नीदरलैंड के पुरुष आज दुनिया में सबसे लंबे हैं। उनकी औसत लंबाई 183 सेंटीमीटर है, लेकिन अब उनका कद और नहीं बढ़ रहा। इसका मतलब है कि कद की एक जैविक सीमा है। हम बेहतर माहौल के जरिए उस सीमा तक तो पहुंच सकते हैं, लेकिन उससे आगे नहीं जा सकते। भविष्य में अगर जलवायु परिवर्तन के कारण भोजन की कमी हुई या नई महामारियां आईं, तो यह ग्राफ फिर नीचे भी जा सकता है। कद का इतिहास कभी सीधी रेखा में नहीं चलता। पूर्वजों से 10 सेंटीमीटर ज्यादा लंबा होना सिर्फ फैशन की बात नहीं है। यह इस बात का प्रमाण है कि बेहतर नीतियां इंसान की जैविक नियति को भी बदल सकती हैं। लंबाई नापने का फीता दरअसल विकास नापने का फीता है। जो समाज अपने बच्चों में निवेश करता है, उन्हें अच्छा भोजन, अच्छे टीके और अच्छी शिक्षा देता है, उसके बच्चे न केवल लंबे होते हैं, बल्कि अधिक स्वस्थ, अधिक उत्पादक और अधिक आत्मविश्वासी भी होते हैं। सौ साल पहले हम छोटे थे, क्योंकि हमारे पास साधन कम थे। आज हम लंबे हैं, क्योंकि हमारे पास विज्ञान है। आने वाले सौ साल में हम कितने लंबे होंगे, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि हम इस विज्ञान को कितने लोगों तक पहुंचा पाते हैं।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

दुनिया हँस रही है, पर अंदर से रो रही है, सिर्फ साढ़े छह प्रतिशत लोग दिल से खुश

बानवे देशों में पचास हजार दिल टटोले तो सच निकला
मानसिक स्वास्थ्य पर गहराता संकट, अमीर देशों का झूठा सुख और युवा दिल का सन्नाटा

कोलंबिया यूनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं ने बानवे देशों के लगभग पचास हजार लोगों पर एक वैश्विक सर्वेक्षण किया है। इसके अनुसार केवल साढ़े छह प्रतिशत लोग ही मानसिक रूप से पूरी तरह समृद्ध महसूस कर रहे हैं। बाकी पूरी दुनिया किसी न किसी उदासी, डर, थकान या खालीपन में जी रही है। यह आंकड़ा चौंकाने वाला है, क्योंकि हम सोचते हैं कि पैसा आ गया तो खुशी आ जाएगी, लेकिन शोध कह रहा है कि पैसा तो आ गया, पर खुशी नहीं आई।

सोशल इंडिकेटर्स रिसर्च पत्रिका में प्रकाशित इस अध्ययन के अनुसार वैश्विक स्तर पर लोगों का मानसिक स्तर कमजोर हो रहा है। मानसिक स्वास्थ्य और जुझारूपन में गिरावट आ रही है। अधिकांश लोगों का मानना है कि आर्थिक और राजनीतिक अस्थिरता, भविष्य को लेकर डर और काम का दबाव उनकी मानसिक ऊर्जा को सोख रहे हैं। सबसे ज्यादा प्रभावित युवा वर्ग और कामकाजी उम्र के लोग हैं, जो सुबह से शाम तक दौड़ रहे हैं, लेकिन कहीं पहुंच नहीं पा रहे हैं।

डॉ. काई रुगोरी के अनुसार यह स्थिति भविष्य के संकट का संकेत नहीं है, बल्कि यह अभी और इसी वक्त जल रही एक रेड लाइट है। उन्होंने वैश्विक नेताओं से अपील की है कि वे खोखले वादों के बजाय ठोस कदम उठाएं। एआई के कारण छिनने वाली नौकरियों के बीच लोगों की आजीविका सुरक्षित की जाए। यह चेतावनी बताती है कि अगर अभी नहीं जागे तो अगली महामारी वायरस की नहीं, बल्कि उदासी की होगी।

आमतौर पर स्कैंडिनेवियाई देशों जैसे फिनलैंड और डेनमार्क को जीवन की उच्च गुणवत्ता और खुशहाली के लिए जाना जाता है, लेकिन इस अध्ययन में पाया गया कि विकसित और संपन्न देशों में रहने के बावजूद लोग मानसिक रूप से समृद्ध महसूस नहीं कर पा रहे हैं। सर्वेक्षण के अनुसार केवल साढ़े छह प्रतिशत वैश्विक प्रतिभागी ही मानसिक समृद्धि के सभी पैमानों पर खरे उतरे, वहीं अधिकांश लोगों ने माना कि उनके करीबी रिश्ते मजबूत नहीं हैं। सर्वेक्षण में केवल 38 प्रतिशत लोगों को ही अपनों का सहारा महसूस हुआ। यानी बड़ा घर है, पर घर में अपनापन नहीं है।



आमतौर पर स्कैंडिनेवियाई देशों जैसे फिनलैंड और डेनमार्क को जीवन की उच्च गुणवत्ता और खुशहाली के लिए जाना जाता है, लेकिन इस अध्ययन में पाया गया कि विकसित और संपन्न देशों में रहने के बावजूद लोग मानसिक रूप से समृद्ध महसूस नहीं कर पा रहे हैं। सर्वेक्षण के अनुसार केवल साढ़े छह प्रतिशत वैश्विक प्रतिभागी ही मानसिक समृद्धि के सभी पैमानों पर खरे उतरे, वहीं अधिकांश लोगों ने माना कि उनके करीबी रिश्ते मजबूत नहीं हैं। सर्वेक्षण में केवल 38 प्रतिशत लोगों को ही अपनों का सहारा महसूस हुआ। यानी बड़ा घर है, पर घर में अपनापन नहीं है।

पारंपरिक रूप से यह माना जाता था कि खुशहाली का ग्राफ अंग्रेजी के यू अक्षर के आकार का होता है, यानी युवा और बुजुर्ग ज्यादा खुश रहते हैं, लेकिन इस अध्ययन ने इस धारणा को चुनौती दी है। 18 से 25 वर्ष आयु वर्ग के युवाओं के जवाबों ने वैश्विक मानसिक स्वास्थ्य स्कोर को सबसे ज्यादा नीचे गिराया है। इस युवा आबादी में केवल 14.7 प्रतिशत लोगों में ही मानसिक बीमारी के कोई लक्षण नहीं मिले, जबकि 28.6 प्रतिशत युवाओं में मध्यम से गंभीर अवसाद और चिंता के लक्षण पाए गए। यह सबसे खतरनाक संकेत है, क्योंकि यही युवा कल का देश चलाएंगे और आज ही थक गए हैं।

हमने खुशी को मॉल में खोजा, मोबाइल में खोजा, विदेश यात्राओं में खोजा, लेकिन खुशी वहां थी ही नहीं। कोलंबिया का शोध साफ कहता है कि खुशी का संबंध बैंक बैलेंस से नहीं, बल्कि मन के बैलेंस से है। हमने तरक्की को सड़कों और इमारतों से नापा, लेकिन कभी यह नहीं नापा कि रात को कितने लोग सुकून से सो पाते हैं। असली तरक्की यह नहीं कि कितनी गाड़ियां बिकीं, असली तरक्की यह है कि कितने लोग बिना दवा के सो सके। आज का युवा दो दुनिया में जी रहा है। एक असली दुनिया, जहां नौकरी के लिए धक्के खाने पड़ते हैं और दूसरी रील वाली दुनिया, जहां हर कोई हंस रहा है, घूम रहा है और पैसा उड़ा रहा है। वह हर मिनट अपनी तुलना दूसरों से करता है। उसे लगता है कि सब जीत गए, मैं ही हार गया। यही तुलना उसे अंदर से खा रही है। ऊपर से एआई का नया डर कि कल मेरी नौकरी मशीन कर देगी। माता-पिता की उम्मीदें, समाज के ताने और रिश्तों में टूटन का दर्द, सब मिलकर उसके दिमाग में तनाव पैदा कर रहे हैं। वह बाहर से कूल दिखता है, लेकिन अंदर से टूटा हुआ है।

शोध में एक बात बार-बार सामने आई है कि जिसे अपनों का सहारा मिला, वह ज्यादा समृद्ध महसूस करता है। यानी दवा और डॉक्टर से ज्यादा जरूरी है एक दोस्त का कंधा, एक मां की गोद, एक पिता की शाबाशी और साथ बैठकर चाय पीना। हमने यह सब छोड़ दिया है। हम साथ रहते हुए भी अलग-अलग मोबाइल में खोए हैं। दादा-दादी को वृद्धाश्रम भेज दिया, पड़ोसी को जानते तक नहीं। जब जड़ ही सूख जाएगी तो पत्ते हरे कैसे रहेंगे? मानसिक समृद्धि का पहला मंत्र है, रिश्तों को रिचार्ज करो। हर तरफ शोर है। टीवी पर बहस है, चुनाव का शोर है, महंगाई का शोर है और युद्ध का शोर है। आम आदमी को लगता है कि दुनिया बहुत तेज भाग रही है और वह पीछे छूट रहा है। यह असहायता उसे बीमार बना रही है। जब भविष्य का पता ही नहीं कि कल नौकरी रहेगी या नहीं, तो आज खुश कैसे रहा जाए? इसलिए आर्थिक और राजनीतिक स्थिरता केवल सरकार का मुद्दा नहीं है, यह मानसिक स्वास्थ्य का मुद्दा भी है। सरकार, समाज और परिवार, तीनों की जिम्मेदारी है। सरकार को मानसिक स्वास्थ्य को बुखार जितना सामान्य मानना होगा। हर स्कूल और कॉलेज में अच्छे काउंसलर होने चाहिए। हर दफ्तर में काम के घंटे तय होने चाहिए। युवाओं को एआई के दौर में नए कौशल सिखाने होंगे, ताकि उनका डर कम हो। समाज को सफलता की परिभाषा बदलनी होगी। केवल पैसा और पद ही सफलता नहीं हैं, मन की शांति भी सफलता है। परिवार को चाहिए कि बच्चे से केवल नंबर मत पूछो, उससे पूछो कि आज दिल कैसा है? क्या किसी ने दुखी किया? क्या तुम ठीक से सोए? ये छोटे सवाल ही बड़ी दवा बन सकते हैं। साढ़े छह प्रतिशत का यह आंकड़ा शर्म नहीं, सीख है। यह कहता है कि दुनिया में सब कुछ होने के बाद भी आदमी खुश नहीं है, क्योंकि उसने खुशी को बाहर खोजा, अंदर नहीं देखा। अब समय है कि हम लौटें अपने गांव की चौपाल पर, अपने परिवार की थाली पर और अपने दोस्तों की हंसी पर। असली समृद्धि एसी वाले कमरे में नहीं, बल्कि खुली हवा में अपनों के साथ सांस लेने में है। अगर यह बात हम समझ गए तो वह दिन दूर नहीं, जब साढ़े छह प्रतिशत से बढ़कर साठ प्रतिशत लोग कहेंगे कि हां, हम खुश हैं, हम समृद्ध हैं।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)